International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 137-140

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 137-140
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-03-2022
Accepted: 12-04-2022

विष्णु कुमार
शोधच्छात्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
विष्णु कुमार
शोधच्छात्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राचीन आश्रमचतुष्ट्य की प्रासंगिकता

विष्णु कुमार

प्रस्तावना

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ [1]

इस संसार में शास्त्र नियत कर्मो को करते हुए मनुष्य को सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करना चाहिए, इस प्रकार के कर्मो को करता हुआ मनुष्य बंधन में नहीं पडता है।
आज की इस भौतिकवादी युग में मनुष्य अल्प परिश्रम से ही महान् से महानतम फल प्राप्त करने की चेष्टा में अनेक अनैतिक कार्यों में लगा हुआ है । जिसके परिणामस्वरूप आज समाज में भ्रष्टाचार ,सम्बन्धों का पतन आपसी वैमनस्यता आदि अनेक प्रकार की समाज में विसंगतियाँ प्राय: दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिए यदि हम अल्प परिश्रम से अधिक फल की भावना को छोडकर अधिक परिश्रम से अधिक फल की कामना करते हुए आश्रम चतुष्टय का पालन करते हैं। तो हमारा जीवन सुखद और निरोगी होगा ।
आश्रम शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक 'श्रम' धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है । जिसका विग्रह होता है – 'आ समन्तात् श्रमो यस्मिन् इति आश्रम:' अर्थात् जहाँ सभी प्रकार से श्रम ही श्रम किया जाय वह आश्रम कहलाता है ।
कर्म को लेकर भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते है-

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ [2]

मनुष्य की सामान्य आयु सौ वर्ष स्वीकार करते हुए धर्मादि चतु: पुरुषार्थों के सम्यक उपभोग हेतु जीवन को २५-२५ वर्षों के चार बराबर भागों में विभाजित किया गया है ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वार: पृथगाश्रम: ॥

इस प्रकार आश्रम एक तरह से कर्ममय जीवनयात्रा के चार पडाव हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति रूक रूककर एक निश्चित कार्य संपन्न करके ही आगे बढता है।

आश्रम व्यवस्था का प्रचलन कब से हुआ ? इसमें विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। लेकिन वेदों एवं उपनिषदों में अनेक स्थलों पर आश्रम सूचक शब्दों का प्रयोग भी दृष्टव्य है- "मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन् वा अरेऽहस्मात् स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति"[1] यहाँ पर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयि और कात्यायनी के साथ बँटवारा करते हुए संन्यास लेने की बात कह रहे है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् काल तक आश्रमों की व्यवस्था विकसित हो रही थी जो सूत्र काल में परिपूर्ण एवं सुगठित हुई।

आधुनिक विद्वानों के विचार है कि आरम्भ में तीन ही आश्रम थे संन्यास का प्रचलन बाद में हुआ, मनु ने भी एक स्थल पर केवल तीन आश्रमों का निर्देश किया है-

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तात्रयोऽग्नयः[2] ॥

लेकिन गौतम , आपस्तम्ब आदि शास्त्रकारों ने चार आश्रमों का स्पष्ट उल्लेख किया है –

चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्यमाचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थ्यमिति।[3]

अतः चत्वार आश्रमों की मान्यता पुरुषार्थों की दृष्टि से युक्तिसंगत मानी गयी है।

ब्रह्मचर्य आश्रम-

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल इन्द्रिय संयम नहीं वरण ब्रह्म प्राप्ति के सम्पूर्ण आचरणों का नाम ब्रह्मचर्य है। योगसूत्रकार भी कहते है-

ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।[4]

इस विषय पर मनु का कथन है कि अपनी कामनाओं को वश मे रखना तथा अपनी क्रियाओं को धर्म समन्वित करना ब्रह्मचारी का श्रेष्ठ आचरण था। इन्द्रिय संयम से ही उसे सिद्धि प्राप्त होती थी।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातष्ठेद्विद्वान्यन्यन्तेव वाजिनाम्॥[5]

ब्रह्मचर्य जीवन में ब्रह्मचारी को नृत्य, गायन, वादन इत्र, स्त्री से हास-परिहास स्त्री की कामना करना तथा उसका अकारण स्पर्श, आदि निषिद्ध था। ब्रह्मचारी के लिए जो कठोर दिनचर्या निर्दिष्ट है उसका प्रयोजन है कि वह लगातार कर्म करता रहे। क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न प्रयोगों एवं सर्वेक्षणों के माध्यम से प्रमाणित किया है कि खाली रहना, नर्तन, गीत, स्पर्श, कोमल शय्या पर शयनादि कामोत्तेजक होते हैं।

अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के माध्यम से मृत्यु को भी लाँघा जा सकता है –

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।[6]

योगसूत्र में ब्रह्मचर्य पालन का परिणाम शक्ति लाभ बताया है –

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।[7]

इसके विपरीत ब्रह्मचर्य का पालन न करने पर आयु, तेज, बल, वीर्य, प्रज्ञा आदि सब कुछ नष्ट हो जाता है।

लेकिन आज का छात्र ब्रह्मचर्य अवस्था में ही गृहस्थाश्रम का उपभोग कर लेता है जिससे गृहस्थाश्राम में पहुँचने पर आपसी सामंजस्य नहीं बना पाता है फलतः सम्बध विच्छेद, मानसिक तनाव , रिश्तो का पतन आदि अनेकों दुष्परिणाम समाज के सामने परिलक्षित होते हैं। अतः इन दुष्परिणामों से निवृत्ति के लिए ब्रह्मचर्याश्रम का पालन नितान्त रूप से आवश्यक है।

गृहस्थाश्रम-

गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का द्वार कहा जाता है इसी आश्रम से ही अन्य आश्रम भी क्रियान्वित होते हैं। यह सभी आश्रमों में श्रेष्ठ आश्रम है। आचार्य मनु गृहस्थ आश्रम को बताते हुए कहते हैं कि ब्रह्मचारी बालक को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों शास्त्रों और अनेक विद्याओं से परिपूर्ण होकर के अखंडित ब्रह्मचर्य के साथ इस आश्रम में प्रवेश करे-

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रममन्।

अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत॥[8]

गृहस्थ वह आश्रम है जिसमें गृहणी को प्राप्त किया जाता है और वह विवाह संस्कारों द्वारा होता है। विवाह के भी कई प्रकार बताए गए है। गृहस्थ के दश कर्तव्यों को बताया गया है। जिसका सदैव पालन करना चाहिए-

[1] बृह० उप० ४.५.२
[2] मनुस्मृति-२.२३०
[3] आप० धर्म सू० २.९.२१.१
[4] योगसूत्र २.३०
[5] मनुस्मृति- २.८८
[6] अथर्ववेद १.५.१९
[7] योगसूत्र २.१८
[8] मनुस्मृति ३.२

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥[9]

अतिथि सेवा गृहस्थ का परम कर्तव्य माना गया है। अतिथि को हमारे यहाँ देवता के तुल्य माना गया है। गृहस्थाश्रम से मनुष्य को पितृऋण से मुक्ति मिलती है। पञ्च प्रकार के महायज्ञो को गृहस्थ के लिए आवश्यक बताए गए है। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृ यज्ञ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञं पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवी बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।[10]

इस आश्रम के महत्त्व को बताते हुए मनु कहते है कि जिस प्रकार सभी प्राणियों का जीवन वायु पर आधृत हैं उसी प्रकार अन्य सारे आश्रम गृहस्थ आश्रम पर अवलम्बित हैं।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव:।
तथा गृहस्थं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा:॥[11]

लेकिन आजके भौतिकवादी युग में जो प्राचीन गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य थे वे लुप्तप्राय हो गये हैं,
लोग इतना अपने आप में व्यस्त हो गए है कि घर में आये अतिथि से बात करने के लिए वक्त का अभाव है , स्वागत तो दूर रहा। इस कारण से व्यक्ति में अकेलापन ,सम्बन्धों का पतन आदि अनेक समस्यायें हमें देखने को मिलती है। अत: इस प्रकार की समस्याओं के निवारण के लिए गृहस्थाश्रम रूपी पडाव का अनुकरण करना अत्यावश्यक है।

वानप्रस्थाश्रम-

वानप्रस्थ का तात्पर्य है वन की ओर गमन। गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का निर्वहन करने के बाद मनुष्य अरण्य का आश्रय लेते थे -

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मन:
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।[12]

अथर्ववेद में कहा गया है कि मनुष्य जब गृहस्थाश्रम में रहता है तो उसे अनेक प्रकार की दु:खों का सामना करना पडता है, पूरा जीवन ही दु:खमय प्रतीत होने लगता है इससे निवृत्ति के लिए उसे वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लेना चाहि –

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वातमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमाक्रमतां तृतीयम्।।[13]

इस आश्रम में जीवन को अधिकाधिक सरल, संयमित तथा सादा रखना चाहिए।

अप्रयत्न: सुखार्थेषु ब्रह्मचारी।[14]

यदि इस प्रकार के परिवेश में आज का समाज भी रहे तो, वृद्धों के साथ होने वाली समस्या का सामना नहीं करना पडेगा परिणामत: समाज व परिवार सुखमय होगा।
समसाममिक युग में मनुष्य इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते अवसादग्रस्त होने लगता है, इन समस्याओं से मुक्ति के लिए वानप्रस्थाश्रम का पालन करना चाहिए।

संन्यासाश्रम

आश्रमों के वर्णन में अन्तिमाश्रम संन्यास को कहा गया है, संन्यास शब्द का अर्थ है सम्यक् रूप से त्याग- सम्यक् न्यास: प्रतिग्रहाणां संन्यास:।[15]
संन्यास का तात्पर्य भौतिक पदार्थों का त्याग मात्र ही नहीं है अपितु राग-द्वेष, मोह-ममता आदि भावों का त्याग है। गीता में श्री कृष्ण कहते भी है-

ज्ञेय: स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥[16]

संन्यासी के कर्तव्यों को बताते हुए कहा गया है कि वह निरपेक्ष और एकाकी जीवन व्यतीत करें-

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते।[17]

अत: संन्यासी भ्रमण करते हुए अपने पराए की भावना से ऊपर उठकर "आत्मवत् सर्वभूतेषु... का व्यवहार करता था , सम्पूर्ण विश्व उसका अपना परिवार बन जाता था।

अयं निजं परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥[18]

[9] मनुस्मृति ६.६२
[10] वहीं ३.७०
[11] वहीं ३.७८
[12] वहीं ६.२
[13] अथर्ववेद ५.९.१
[14] मनुस्मृति ६.२६
[15] बौधायन धर्मसूत्र १०.१
[16] गीता ५.३
[17] मनुस्मृति ६.४२
[18] महोपनिषद् ४.७१.

इस प्रकार संन्यासी इन्द्रिय निरोध, राग, द्वेष, त्याग तथा अहिंसा समन्वित लोकोपकार द्वारा सरलतया मोक्षयोग्य हो जाता है-

इन्द्रियाणां निरोधने रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥[19]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज के समय में व्यक्ति परिश्रम न करने के कारण संन्यासाश्रम तक पहुँच ही नहीं पाता है । अत: हमे परिश्रम करते हुए आश्रमचतुष्टय का सम्यक् रूप से पालन करना चाहिए । जिससे प्राचीन "जीवेम शरद: शतम्" की भावना को पुन: जीवन्त किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. मनुस्मृति, सम्पादक- शर्मा, गिरिधर गोपाल.वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, २०१६
2. पातञ्जलयोगदर्शन, सम्पादक-भारती, परमहंसस्वामीअनंत. दिल्ली: चौखम्भा ओरियान्टालिया, २०१८
3. ऋग्वेदसंहिता, सम्पा०- कम्बोज,जियालाल, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली २००५
4. ईशादि नौ उपनिशद्, गीतप्रेस, गोरखपुर, सं.२०७३
5. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीतप्रेस, गोरखपुर, सं.२०६१
6. प्राचीन भारतीय संस्कृति. वीरेन्द्र कुमार सिंह, अक्षय वट प्रकाशन, इलाहाबाद २०११
7. श्रीमद्भगवद्गीता, सम्पा.- स्वामी, ए०सी० भक्तिवेदान्त प्रभुपाद. भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई २०१५

[19] मनु०६.६०